लोहिया विषयक तीन पुरानी टिप्पणियां

सत्ता की दलाली में लोहिया का इस्तेमाल

प्रेम सिंह

यह विभिन्न राजनीतिक पार्टियों और नेताओं द्वारा प्रतिमाओं (icons) का राजनीतिक सत्ता के लिए इस्तेमाल का दौर है। प्रतिमाओं के राजनैतिक इस्तेमाल की यह प्रवृत्ति इकहरी और एकतरफा न होकर काफी पेचदार है। इसमें अपनी पसंदीदा प्रतिमा को उठाने के लिए किसी दूसरी प्रतिमा को गिराना आवश्यक कर्म हो जाता है। नई प्रतिमाएं अपनाई जाती हैं और पुरानी छिपाई जाती हैं। प्रतिमाओं की छीना-झपटी होती है और यह आरोप-प्रत्यारोप भी कि फलां राजनीतिक पार्टी/नेता फलां प्रतिमा को अपनाने का हकदार नहीं है। प्रतिमाओं की यह छीना-झपटी कई बार मिथक-लोक तक पहुंच जाती है। सेकुलर भी संघियों की तरह मिथक-लोक को इतिहास की किताब की तरह पढने और समझाने लगते हैं। प्रतिमा जरूरी नहीं है, जैसा कि अक्सर होता है, स्वतंत्रता आंदोलन के दौर की यानी भूतकालिक हो। कारपोरेट और मीडिया द्वारा कतिपय जीवित शख्सों को भी रातों-रात प्रतिमा का गौरव प्रदान कर दिया जाता है। प्रतिमा होगी तो भक्त भी होंगे। जैसे कुछ दिन पहले के 'सोनिया-भक्त' और हाल के 'मोदी-भक्त'! बीच में अण्णा हजारे के भक्तों की बाढ भी देखी गई। उसे देख कर लगा गोया पूरा देश ही बह गया है - यानी भ्रष्ट भारत! बाद में पता चला कि कारपोरेट निर्मित वह बाढ कांग्रेस को बहा कर मोदी और केजरीवाल को नवउदारवाद की आगे की बागडोर थमाने के लिए थी। बहरहाल, प्रतिमाओं के राजनैतिक इस्तेमाल की प्रवृत्ति का इस कदर जोर है कि अलग-अलग विचारों/खेमों के बुद्धिजीवी भी यह कवायद करने में लगे हैं।

ध्यान दिया जा सकता है कि नवउदारवाद आने के साथ प्रतिमाओं के इस्तेमाल और टकराहट का कारोबार तेज होता चला गया है। जताया यह जाता है कि यह अलग-अलग विचारों और प्रतिबद्धताओं का संघर्ष है जिसे अब जाकर सही मायनों में अवसर और तेजी मिली है। लेकिन अंदरखाने ज्यादातर प्रतिमा-पूजक और प्रतिमा-भंजक नवउदारवाद की मजबूती चाहने और बनाने में लगे होते हैं। एक छोटे से उदाहरण से इस सर्वग्रासी प्रवृत्ति को समझा जा सकता है। हाल में सीपीआई (माले) के महासचिव दीपंकर भट्टाचार्य ने अंबेडकर और भगत सिंह के सपनों का भारत बनाने का आह्वान किया है। लेकिन इसके साथ ही वे एनजीओ सरगना अरविंद केजरीवाल के भी पहले दिन से खुले समर्थक हैं। ऐसे हालातों में सत्ता की दलाली करने वाले लोग भी प्रतिमाओं का अपने निजी फायदे के लिए इस्तेमाल करें तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

हमने यह टिप्पणी दरअसल यही दर्शाने के लिए लिखी है। एक ताजा उदाहरण द्रष्टव्य है। निजी आईटीएम यूनीवर्सिटी, ग्वालियर में 27 अगस्त 2016 को डॉ राममनोहर लोहिया स्मृति व्याख्यान के प्रमुख अतिथि यानी प्रमुख वक्ता भाजपा के वरिष्ठ नेता और गृहमंत्री राजनाथ सिंह हैं। कार्यक्रम में अलग-अलग पार्टियों के कई अन्य नेता/मंत्री भी आमंत्रित हैं। कोई नेता किसी प्रतिमा के नाम पर आयोजित स्मृति व्याख्यान दे, इसमें बुराई नहीं है। लेकिन उससे विषय के ज्ञान की अपेक्षा गलत नहीं कही जा सकती। राजनाथ सिंह अच्छे भाजपा नेता हो सकते हैं, लोहिया के चिंतन पर उनके अध्ययन और समझदारी का पूर्व-प्रमाण नहीं मिलता। जाहिर है, यह सत्ता की दलाली के लिए किया गया आयोजन

है। यह सच्चाई इससे भी स्पष्ट होती है कि लोहिया के नाम पर आयोजित इस स्मृति व्याख्यान का कोई विषय नहीं रखा गया है। जो वक्ता जिस तरह से चाहे लोहिया, जिन्होंने शिक्षा, भाषा, शोध, कला आदि को उपनिवेशवादी शिकंजे से मुक्त करने की दिशा में विशिष्ट प्रयास किए, को नवउदारवाद के हमाम में खींच सकता है। इस निजी यूनिवर्सिटी द्वारा आयोजित यह दूसरा लोहिया स्मृति व्याख्यान है। पिछले साल उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी ने जो स्मृति व्याख्यान दिया था, उसका भी कोई विषय नहीं था। कहने की जरूरत नहीं कि हामिद अंसारी सरकार में कितने भी बडे पद पर हों और उस नाते निजी विश्वविद्यालयों को फायदा पहुंचाने की हैसियत रखते हों, राजनाथ सिंह की तरह लोहिया के जीवन, राजनीति और विचारधारा के अध्ययन का उनका भी कोई पूर्व-प्रमाण नहीं मिलता।

आजादी के संघर्ष में हिस्सा लेने वाले प्राय: सभी नेता उच्च स्तर के विचारक भी थे। उनके विषय में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह कही जा सकती है कि वे प्राय: सभी संस्थानों के बाहर सक्रिय थे; बल्कि उन्होंने आजादी की चेतना फैलाने और आजादी पाने के रास्ते पर संस्थानों का निर्माण किया। इन नेताओं का निजी मुनाफे के लिए चलाए जाने वाले शिक्षा संस्थानों के लिए इस्तेमाल गंभीर चिंता की बात है।

25 अगस्त 2016

लोहिया, भारतरत्न और सौदेबाज़ समाजवादी

प्रेम सिंह

किसी क्षेत्र में विशिष्ट भूमिका निभाने वाले व्यक्ति के निधन पर शोक व्यक्त करते हुए अक्सर कहा जाता है कि वह अपने विचारों और कार्यों के रूप में दुनिया में जीवित रहेगा. यह भी कहा जाता है कि उसके विचारों और कार्यों को समझ कर उन्हें आगे बढ़ाना उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि होगी. कहने में यह भली बात लगती है. लेकिन, विशेषकर सक्रिय राजनीति में, दिवंगत व्यक्ति का अक्सर सत्ता-स्वार्थ के लिए इस्तेमाल होता है. अनुयायी प्रतिमा-पूजा करते हुए और और विरोधी प्रतिमा-ध्वंस करते हुए दिवंगत नेता के विचारों और कार्यों को अनेकश: विकृत करते हैं. यह भी होता है कि विचारधारा में बिल्कुल उलट प्रतीक-पुरुषों को सत्ता-स्वार्थ के लिए बंधक बना लिया जाता है. प्रतीक-पुरुषों की चोर-बाज़ारी भी चलती है. इस तरह प्रतीक-पुरुषों के अवमूल्यन की एक लंबी परंपरा देखने को मिलती है, जो बाजारवाद के दौर में परवान चढ़ी हुई है. अफसोस की बात है कि दिवंगत व्यक्ति अपना इस्तेमाल किये जाने, विकृत किये जाने, बंधक बनाए जाने या चोर-बाजारी की कवायदों को लेकर कुछ नहीं कर सकता. शयद यही समझ कर डॉ. राममनोहर लोहिया ने कहा था कि किसी नेता के निधन के 100 साल तक उसकी प्रतिमा नहीं बनाई जानी चाहिए. ज़ाहिर है, लोहिया की इस मान्यता में प्रतिमा प्रतीकार्थक है.

डॉ. राममनोहर लोहिया को गुजरे अभी 50 साल हुए हैं. ऊपर जिन प्रवृत्तियों का ज़िक्र किया गया है, कमोबेस लोहिया भी उनका शिकार हैं. इधर उन्हें भारतरत्न देने की मांग बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से की है. 2011-12 में लोहिया के जन्मशताब्दी वर्ष के अवसर पर भी कुछ लोगों ने उन्हें भारतरत्न देने की मांग रखी थी. लोहिया के विचारों, संघर्ष और व्यक्तित्व का ज़रा भी लिहाज़ किया जाए तो उनके लिए सरकारों से किसी पुरस्कार की मांग करना, या उनके नाम पर

पुरस्कार देना पूरी तरह अनुचित है. लोहिया आजीवन राजनीति में रहते हुए भी 'राज-पुरुष' नहीं थे. दो जोड़ी कपड़ा और कुछ किताबों के अलावा उनका कोई सरमाया नहीं था. कहने की ज़रुरत नहीं कि उनका चिंतन और संघर्ष किसी पद या पुरस्कार के लिए नहीं था. सौदेबाज़ समाजवादी नवसाम्राज्यवाद की गुलाम सरकार से लोहिया को भारतरत्न देने की मांग करके मृत्योपरांत उनका अपमान कर रहे हैं.

देश में बहुतायत में सौदेबाज़ समाजवादी हैं. ये लोग भारतीय समाजवाद के प्रतीक-पुरुषों का जहां -तहां सौदा करते हैं. एनजीओ से लेकर विभिन्न राजनीतिक पार्टियों और सरकारों तक इनकी आवा-जाही रहती है. नीतीश कुमार उनमें से एक हैं. पिछले दिनों वे मध्यप्रदेश के ग्वालियर शहर में एक प्राइवेट यूनिवर्सिटी में लोहिया स्मृति व्याख्यान में शामिल हुए थे. यह स्मृति व्याख्यान राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने दिया था. पिछले साल गृहमंत्री राजनाथ सिंह यह व्याख्यान दे चुके थे. हो सकता है नीतीश कुमार ने उस अवसर पर राष्ट्रपति महोदय से लोहिया को भारतरत्न दिलवाने के बारे चर्चा की हो. और हो सकता है राष्ट्रपति महोदय ने उन्हें यह मांग प्रधानमंत्री से करने की सलाह दी हो.

गाँधी और आम्बेडकर के विचारों और कार्यों से आरएसएस/भाजपा का कोई जुड़ाव नहीं है. लेकिन नरेंद्र मोदी और उनकी सरकार सत्ता के लिए उनका निरंतर इस्तेमाल कर रहे हैं. लोहिया ने आरएसएस को भारतीय संस्कृति के पिछवाड़े पड़े घूरे पर पलने वाला कीड़ा कहा है. लोहिया अंबेडकर को गाँधी के बाद भारत का सबसे बड़ा आदमी मानते थे. आगामी 12 अक्तूबर को संभव है भारतरत्न देकर लोहिया को नई साम्राज्यशाही की ताबेदारी में 'बड़ा आदमी' बना दिया जाए! सौदेबाज़ समाजवादी इसे अपनी बड़ी उपलब्धि बताएँगे. गाँधी और अंबेडकर अगर नरेंद्र मोदी के महल में बंधक पड़े हैं, तो इसमें सौदेबाज़ गांधीवादियों और सौदेबाज़ अंबेडकरवादियों की कम भूमिका नहीं है.

कई बार लगता है इंसान साधारण जीवन जीकर ही दुनिया से विदा ले तो बेहतर है. मानवता के लिए जीने वाले लोग अक्सर दुर्भाग्यशाली साबित हुए हैं. वे जीवनपर्यंत कष्ट पाते हैं, और मृत्यु के बाद भी उनकी मिटटी खराब होती है! बाजारवाद के इस भयानक दौर में पुरखों की खाक के सौदागर गली-गली घूमते है! वे पुरखों की खाक के साथ राष्ट्रीय धरोहरों का सौदा भी कर रहे हैं!

मई 2018

और अंत में लोहिया!

प्रेम सिंह

23 मार्च को डॉ. राममनोहर लोहिया का जन्मदिन होता है. हालांकि कहा जाता है वे अपना जन्मदिन मनाते नहीं थे. क्योंकि उसी दिन क्रांतिकारी भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को ब्रिटिश हुकूमत ने फांसी पर चढ़ाया था. लिहाज़ा, भारत के ज्यादातर समाजवादी लोहिया जयंती को शहीदी दिवस के साथ जोड़ कर मनाते हैं. इस बार लोहिया जयंती के अवसर पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने ब्लॉग पर

लोहिया को याद किया. जैसे ही यह खबर सार्वजनिक हुई, मेरे एक मित्र ने फोन करके इस ओर ध्यान दिलाया. उन्होंने तकाजे के साथ कहा कि मुझे तुरंत प्रधानमंत्री के ट्वीट का जवाब लिखना चाहिए. मैंने मित्र से कहा कि वर्तमान राजनीति में ब्लॉग और ट्वीटर एक विशाल उद्योग बन गया है, जिसमें भुगतान के आधार पर या चाटुकार काम करते हैं. नेताओं के ब्लॉग और ट्वीट का जवाब लिखेंगे तो अपना काम करने की फुर्सत ही नहीं होगी. मैंने मित्र से पूछा कि मोदी पिछले पांच सालों से गांधी, अंबेडकर, पटेल, भगत सिंह जैसी मूर्धन्य हस्तियों के बारे में जो कहते आ रहे हैं, क्या उनका जवाब दिया जा सकता है? क्या जवाब दिया भी जाना चाहिए?

समाजवादियों में एक शब्द 'खांटी लोहियावादी' चलता है. फोन करने वाले मित्र उसी कोटि में आते हैं. वे बेचैन हो कर बोले, लेकिन डॉक्टर साहब (लोहिया) की बात अलग है; वे अभी तक बचे हुए थे; मोदी को उन पर कब्ज़ा नहीं करने देना चाहिए! मैंने कहा इस विवाद में पड़ना मोदी की पिच पर खेलना है, जिससे मैं भरसक बचने की कोशिश करता हूं. मित्र थोड़ा नाराज हो गए. मैंने उनसे निवेदन किया कि मोदी और आरएसएस न गांधी, अंबेडकर, पटेल, भगत सिंह आदि पर, और न ही लोहिया पर कब्ज़ा जमा सकते हैं. जो व्यक्ति या संगठन न आज़ादी के संघर्ष के मूल्यों को मानता हो और न संविधान के मूल्यों को, वह भला स्वतंत्रता के संघर्ष में तपी इन हस्तियों को कैसे अपना सकता है? दोनों के बीच मौलिक विरोध है. मोदी और आरएसएस केवल उनका सत्ता के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं, और वही कर रहे हैं. लोहिया के बारे में या बचाव में मोदी या आरएसएस के संदर्भ में कुछ भी कहने का औचित्य नहीं है. मैंने मित्र से आगे कहा कि लोहिया की 50वीं पुण्यतिथि पर अमृतलाल ने 'इंडियन एक्सप्रेस' (12 अक्तूबर 2017) में लोहिया के राजनीतिक चिंतन और कर्म पर एक सारगर्भित लेख ('राममनोहर लोहिया : इन हिज टाइम्स एंड अवर्स') लिखा था. मेरी समझ में पत्रकारी लेखन में लोहिया पर लिखे गए इधर के लेखों में वह सर्वोत्तम है. आप अपनी तसल्ली के लिए वह पढ़ लीजिए. और हो सके तो वह लेख लोगों तक प्रेषित करिए.

मित्र ने हामी भरी लेकिन मोदी का खंडन करने की बात पर अड़े रहे. हार कर मैंने उनसे कहा कि लोहिया के अपहरण के लिए मोदी और आरएसएस को दोष देने का ज्यादा औचित्य नहीं है. दोष उन 'समाजवादियों' का ज्यादा है जो नीतीश कुमार जैसे आरएसएस/भाजपा परस्त नेताओं की अगुआई में लोहिया जयंती अथवा पुण्यतिथि के अवसर पर कभी गृहमंत्री राजनाथ सिंह और कभी राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद को मुख्य अतिथि के रूप में बुला कर लोहिया का व्यापार करते हैं! मित्र सचमुच खिन्न हुए और यह कहते हुए फोन रख दिया कि ऐसे लोग निश्चित रूप से सफल हो गए हैं. देख लेना इस बार अगर मोदी जीतेंगे तो उनकी सरकार लोहिया को जरूर भारत-रत्न देगी. वह लोहिया का अभी तक का सबसे बड़ा अवमूल्यन होगा.

बहरहाल, सुबह अखबार देखा तो मोदी के ब्लॉग पर लोहिया के बारे में लिखी गई टिप्पणी पर अच्छी-खासी खबर पढ़ने को मिली. पता चला कि मोदी ने लोकसभा चुनावों के मद्देनज़र अंत में लोहिया को हथियार बना कर विपक्ष पर प्रहार किया है. पूरी टिप्पणी में बड़बोलापन और खोखलापन भरा हुआ है. एक स्वतंत्रता सेनानी और गरीबों के हक़ में समानता का संघर्ष चलाने वाले दिवंगत व्यक्ति का उनकी जयंती के अवसर पर चुनावी फायदे के लिए इस्तेमाल अफसोस की बात है. तब और भी ज्यादा जब ऐसा करने वाला शख्स देश का प्रधानमंत्री हो! जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, लोहिया की विचारधारा,

सिद्धांतों, नीतियों पर मोदी के ब्लॉग के संदर्भ में चर्चा करने की जरूरत नहीं है. केवल उनके गैर-कांग्रेसवाद, जो मोदी के मुताबिक उनके मन-आत्मा में बसा हुआ था, पर थोड़ी बात करते हैं. यह पूरी तरह गलत है कि लोहिया के 'मन और आत्मा' में कांग्रेस-विरोध बसा था. मोदी ने नॉन-कांग्रेसिज्म को अपने ब्लॉग में एंटी-कांग्रेसिज्म कर दिया है.

लोहिया ने कांग्रेस के झंडे तले आज़ादी का संघर्ष किया था. कांग्रेस के अंतर्गत 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (सीएसपी) के गठन में हिस्सेदार बने थे. आज़ादी के बाद लोकतांत्रिक समाजवाद के लक्ष्य की दिशा में काम करने के उद्देश्य से 1948 में सोशलिस्ट पार्टी को कांग्रेस से अलग किया था. यह फैसला इसलिए किया गया कि कांग्रेस ने अपने नए पार्टी संविधान के तहत पहले की तरह सीएसपी को साथ रखने से इनकार कर दिया था. लोकतांत्रिक व्यवस्था में सत्तारूढ़ कांग्रेस और उसके नेतृत्व की आलोचना लोहिया का लोकतांत्रिक फ़र्ज़ था. लोकतंत्र में हमेशा एक ही पार्टी का शासन नहीं चलना चाहिए, लोहिया इस लोकतांत्रिक प्रेरणा पर बल देते थे. इसीलिए लोहिया ने अपने राजनीतिक कैरियर के लगभग अंत में गैर-कांग्रेसवाद की रणनीति अपनाई थी, जिसके चलते 9 राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें बनी थीं. वह उनका कोई राजनीतिक सिद्धांत नहीं था. उन्होंने कांग्रेस के खात्मे की नहीं, उसे कुछ सीटों तक सीमित करने की बात की थी। सीटों की वह संख्या एक सबसे बड़ी पार्टी के अनुसार थी, जिसका मुझे अभी ठीक आंकड़ा याद नहीं आ रहा है। 'जन' (अक्तूबर 1967) के अपने अंतिम सम्पादकीय में उन्होंने गैर-कांग्रेसवाद के प्रयोग की समीक्षा करते हुए, उसके नतीजों पर खुद असंतोष प्रकट किया था.

मोदी के ज़माने की सोनिया गांधी-मनमोहन सिंह कांग्रेस का लोहिया के ज़माने की नेहरू कांग्रेस से सम्बन्ध नाम भर का है. सोनिया गांधी-मनमोहन सिंह की कांग्रेस निगम पूंजीवाद की समर्थक है. आरएसएस/भाजपा और मोदी भी निगम पूंजीवाद के समर्थक हैं. मनमोहन सिंह ने 1991 में नई आर्थिक नीतियां लागू कीं तब भाजपा के वरिष्ठ नेता अटलबिहारी वाजपेयी ने कहा था कि अब कांग्रेस ने भाजपा की विचारधारा अपना ली है. लिहाज़ा, मोदी का कांग्रेस विरोध लम्बे समय तक सत्ता पर कब्ज़ा बनाए रखने की नीयत से परिचालित है. इन दोनों पार्टियों के बीच में नीतिगत अंतर नहीं रह गया है. मोदी कांग्रेस का काम ही आगे बढ़ा रहे हैं. हालांकि एक फर्क है : मनमोहन सिंह ऊंचे पाए के अर्थशास्त्री होने के नाते नवउदारवादी नीतियों को शास्त्रीय ढंग से अंजाम देते थे, मोदी अंधी चालें चलते हैं. सत्ता के दुरूपयोग के मामले में भी मोदी सरकार कांग्रेस से किसी मायने में पीछे नहीं रही है.

मोदी के शासन में उनकी या सरकार की आलोचना करने पर नागरिकों को प्रताड़ित और अपमानित किया जाता है, लोकतंत्र का आधार रही संवैधानिक संस्थाओं को अवमूल्यित और विनष्ट किया जाता है, सरकार के मंत्री संविधान को नहीं मानने और बदलने की बात खुलेआम करते हैं, वे यहां तक कहते हैं कि लोकसभा का यह चुनाव अंतिम होगा, भाजपा अध्यक्ष कहते हैं हम 50 साल तक सत्ता में बने रहेंगे ...

मोदी सरकार की लोकतंत्र-विरोधी प्रवृत्तियों का अंत नहीं है. इसके बावजूद मोदी धुर लोकतंत्रवादी लोहिया का नाम लेकर विपक्ष पर हमला बोलते है! इसे विडम्बना कहें या पाखंड की पराकाष्ठा?

मार्च 2019